जरा गंभीरता से विचार कर !

भगवान आदिनाथ के 6 महिना भोजन का अन्तराय रहा, तब किसी देव ने आकर किसी को आहार देने की विधि क्यों नहीं बताई ? पहले तो गर्भ में आने के 6 माह पहले ही इन्द्रादि अनेक देव भगवान की सेवा में रहते थे तथा स्वर्ग लोक से आकर वस्त्र-वाहन आदि लाने को सावधान होकर उपस्थित रहते थे; वे सब देव कैसे भूल गये ? भरतादि सौ पुत्रों को तथा ब्राह्मी, सुन्दरी को मुनि-श्रावक का सब धर्म पढ़ाया था; उन्होंने भी विचार नहीं किया कि भगवान भी अब मुनि होकर आहार के लिये चर्या कर रहे हैं। वास्तव में अन्तराय कर्म का उदय मंद हुये बिना कौन सहायता कर सकता है ?

युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव ह्न ये महावीतरागी मुनि होकर वन में ध्यान करते थे। उनको दुष्ट बैरी ने आकर अग्नि में लाल लोहे के आभूषण पहिनाये और उनका चाम-मांसादि भस्म हो गया तो भी किसी देव ने सहायता नहीं की।

सुकुमाल महामुनि को 3 दिन तक स्यालिनी अपने 2 बच्चों सहित भक्षण करती रही, वहाँ कोई देव सहायता करने नहीं आया। उनकी माता जिसको बहुत स्नेह था, वह शोक में रोने-धोने में ही लगी रही, पुत्र कहाँ चला गया कोई खोज खबर ही नहीं की।

पाँच सौ मुनियों को घाणी में पेल दिया गया, वहाँ किसी देव ने सहायता नहीं की। बलभद्र राम और नारायण कृष्ण - जिनकी पहले हजारों देव सेवा करते थे, जब हीन कर्म का उदय आया और पुण्य क्षीण हुआ तो कोई पानी पिलानेवाला एक मनुष्य या देव भी पास में नहीं रहा। जो सुदर्शन चक्र से नहीं मरा वह एक भील के बाण से प्राणरहित हो गया। ऐसे अनेक ध्यानी तपस्वी, व्रती-संयमी आदि ने घोर उपसर्ग भोगे। उनमें से बहुतों के देव सहायी नहीं हुये और बहुतों के देव सहायी हुये।

इसलिये यह निश्चित है कि अशुभकर्म का उपशम हुये बिना तथा शुभकर्म का उदय आये बिना कोई देवादि सहायी नहीं होते। स्वयं का शरीर ही क्षत्रु हो जाता है। खरदूषण का पुत्र शंभुकुमार, जिसने बारह वर्ष तक बांस के झुरमुट में कठिन तपस्या करके सूर्यहास नाम की तलवार प्राप्त की थी, सहज ही लक्ष्मण के हाथ आ गई और उसी तलवार से शंभुकुमार का मस्तक कट गया। लक्ष्मण ने तो बिना जाने ही तलवार की धार का प्रयोग अभ्यासरूप में किया था; किन्तु भीतर बीहड़ में बैठे शंभूकुमार का सिर कट गया। अपने हित के लिये सिद्ध की गई विद्या ने अपना ही घात करा दिया। पूर्वकर्म के उदय के निमित्त से ही अनेक उपकार-अपकार होते हैं। कोई देवादि पूजा करने से धन, आजीविका, स्त्री-पुत्रादि देने में समर्थ नहीं है।

- रत्नकरण्डश्रावकाचार, पृष्ठ : 46

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का, घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 22 261 अंक : 9

प्रवचनसार पद्यानुवाद

ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार

द्रव्यसामान्य प्रज्ञापन अधिकार

स्वभाव से ही अवस्थित संसार में कोई नहीं।
संसरण करते जीव की यह क्रिया ही संसार है।।120।।
कर्ममल से मलिन जिय पा कर्मयुत परिणाम को।
कर्मबंधन में पड़े परिणाम ही बस कर्म है।।121।।
परिणाम आत्मा और वह ही कही जीवमयी क्रिया।
वह क्रिया ही है कर्म जिय द्रवकर्म का कर्ता नहीं।।122।।
करम एवं करमफल अर ज्ञानमय यह चेतना।
ये तीन इनके रूप में ही परिणमे यह आत्मा।।123।।
ज्ञान अर्थविकल्प जो जिय करे वह ही कर्म है।
अनेकविध वह कर्म है अर करमफल सुख-दुक्ख हैं।।124।।
ज्ञान कर्मरु कर्मफल परिणाम तीन प्रकार हैं।
आत्मा परिणाममय परिणाम ही हैं आत्मा।।125।।
जो श्रमण निश्चय करे कर्ता करम कर्मरु कर्मफल।
ही जीव ना पररूप हो शुद्धात्म उपलब्धि करे।।126।।

ह्न डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

मैं एक शुद्ध, ममतारहित हूँ

पूज्यपाद आचार्य श्री देवनन्दि के प्रसिद्ध ग्रन्थ इष्टोपदेश के 27 वें श्लोक पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल श्लोक इसप्रकार है ह्न

एकोऽहं निर्ममः शुद्धो ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः ।
बाह्याः संयोगजा भावा मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा ।।27।।

ज्ञानी और योगीन्द्रों द्वारा जानने योग्य मैं एक, ममतारहित, शुद्ध हूँ। अन्य संयोगजन्य समस्त देहादि व रागादि भाव मुझसे सर्वथा भिन्न हैं।

(गतांक से आगे...)

भाई ! तेरे ज्ञानानन्द ध्रुव तत्त्व में परपदार्थों का रंचमात्र भी हस्तक्षेप नहीं है और परपदार्थों में तेरा हस्तक्षेप नहीं है; अतः समस्त अभिप्रायों से रहित होकर एक शुद्धस्वरूपी तत्त्व पर ही दृष्टि केन्द्रित कर !

अरे भाई ! मेरे स्वरूप में मेरा तत्त्व है, परतत्त्व नहीं; इसलिये मेरा आनन्द भी मुझसे ही प्राप्त होता है, वह किसी अन्य से अथवा संयोगादिक से उत्पन्न नहीं होता। अपना आनन्द तो अपने में त्रिकाल एकस्वरूप ही रहता है।

धर्मी जीव अपने स्वरूप को समस्त विपरिताभिनिवेश से रहित जैसा है वैसा जानते हैं। वे ऐसा विचार नहीं करते कि ह्न 'ऐसा करने से धर्म होगा, वैसा करने से धर्म होगा।'

मैं एक हूँ और निर्मम हूँ। इसप्रकार दो बोलों पर चर्चा करने के पश्चात् अब **मैं शुद्ध हूँ** ह्न इस तीसरे बोल पर चर्चा करते हैं।

शुद्धनय की अपेक्षा से मेरा महिमावंत भगवान आत्मा तीनों काल शुद्ध ही है। मैं जड़कर्म और भावकर्मरूप पुण्य-पाप अथवा व्यवहाररत्नत्रय आदि के विकल्पों से रहित परिपूर्ण शुद्धतत्त्व हूँ।

शुद्धनयरूपी ज्ञानचक्षु से ग्रहण होनेवाला मेरा आत्मा राग और कर्मादिक के निमित्त से सर्वथा भिन्न है। मैं तो अनाकुल आनन्द का नाथ हूँ।

मैं केवली और योगियों के ज्ञानगम्य हूँ ह्न इस चौथे बोल में कहते हैं कि मैं केवली सर्वज्ञ भगवन्तों के ज्ञानगम्य अनन्त पर्यायों से सहित हूँ। जानने में आ सकूं ऐसा ज्ञेयतत्त्व हूँ। केवली भगवान मुझे जिस रीति से जान सकें मैं वैसा हूँ।

परद्रव्य मेरे और मैं उनका ह्न ऐसे मिथ्या अभिप्राय से रहित मैं ध्रुव हूँ तथा शुद्धनय की अपेक्षा से राग और कर्म से रहित शुद्धतत्त्व हूँ। अनन्त पर्यायों सहित केवलज्ञानियों के ज्ञान में जानने में आता हूँ तथा श्रुतकेवलियों के द्वारा भी शुद्ध उपयोगरूप ज्ञात होता हूँ और मेरे श्रुतज्ञान द्वारा भी मैं शुद्ध उपयोगरूप ही ज्ञात होता हूँ। ज्ञानी कहते हैं कि मेरा स्वभाव मात्र शुद्ध-उपयोगरूप है ह्न ऐसा मैं जानता हूँ; अत: तू भी जैसा तेरा स्वरूप है, वैसा ही मान, स्वीकार कर !

परद्रव्यों से निमर्मत्व/विभक्त होने के लिये तथा स्व में एकत्व करने के लिए यही उपाय करने योग्य है। मम अर्थात् एकत्वपना और निर्मम अर्थात् विभक्तपना। मैं परद्रव्य से विभक्त हूँ, मेरा स्वभाव सदैव ध्रुव एकरूप है। केवलज्ञानी अनन्त पर्यायों से युक्त मेरे स्वरूप को जानते हैं ह्न ऐसा मैं जान रहा हूँ; इसलिये स्वयं के द्वारा ही जाननेयोग्य होने से मैं स्वसंवेद्य हूँ।

हे भाई ! तेरे द्रव्य-गुण-पर्याय से समस्त परद्रव्य भिन्न हैं तथा समस्त परद्रव्यों से तू सर्वथा भिन्न हैं। तेरा स्वरूप तो तेरे द्वारा ही स्वसंवेद्य है। अनन्त पर्यायों से युक्त तेरे द्रव्य को भगवान जानते हैं और तू भी उन्हें जान सकता है।

प्रश्न : आज तक यह बात समझ में क्यों नहीं आयी ?

उत्तर : यह बात पहले सुनी हो तो समझ में आवे, बाह्य व्यापारादिक में ही लोगों की जिन्दगी चली जाती है; वहाँ से दृष्टि हटाकर अन्तर की योग्यता पर दृष्टि करे तो अपने स्वरूप का भान हो।

गाथा में कहा है कि **'मैं निर्मम, एक, विशुद्ध और योगीगम्य हूँ'** ह्न इसका भाव यह हुआ कि मेरा आत्मा ज्ञानगम्य है। शरीर, मन, वाणी, पुण्य-पाप आदि भाव मुझसे सर्वथा भिन्न हैं, मुझमें और उनमें कोई सम्बन्ध नहीं है ह्न इस अभिप्राय से युक्त आत्मा को जानने का नाम ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान है। सर्वज्ञ परमात्मा के अलावा तीन लोक और तीन काल में इस बात को अन्य कोई नहीं कह सकता।

अब आगामी 28वीं गाथा में कहते हैं कि ये देहादिक संयोग जीव को

दु:खदायी हैं, अत: इन संयोगों का त्याग करना चाहिये।

दु:खसन्दोह भागित्वं संयोगादिह देहिनाम्।
त्यजात्म्येनं तत: सर्वं मनोवाक्कायकर्मभि: ।।

इस संसार में देहादिक के संयोग से प्राणियों को दु:खसमूह भोगना पड़ता है अर्थात् अनंतदु:ख भोगना पड़ता है; इसलिये उन समस्त संबंधों को मैं मन-वचन-कायपूर्वक त्यागता हूँ।

हे भाई ! यह जीव स्वभाव की ओर लक्ष न करके संयोगादिक में ही अपनापना मानकर अनंत दु:ख भोग रहा है। देहादि परपदार्थों का लक्ष हो, स्त्री-पुत्र, रुपया-पैसा आदि का संयोग हो तो प्राणियों को दु:ख भोगना पड़ता है तथा अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति की ओर लक्ष हो तो अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन होता है।

अपने आनन्दस्वरूप का लक्ष छोडकर बाह्य वस्तुओं के साथ अपना संबंध माने, उन वस्तुओं में अपनापन करे, उनमें सुख माने तो अनंत दु:ख ही प्राप्त होगा। परपदार्थों के संबंधपूर्वक जो राग उत्पन्न होता है, वह तो वास्तव में अनंत दु:खों का समूह ही है; अत: परद्रव्यों के संबंध से शांति की प्राप्ति कैसे होगी ? अरे भाई ! अंतरस्वभाव में संबंध स्थापित करने पर ही शांति की प्राप्ति होती है।

हे भाई ! तेरे आत्मस्वरूप में क्या कमी है जो तुझे परद्रव्यों का संबंध करना पडे ? द्रव्यकर्म, भावकर्म से भिन्न असंग निजतत्त्व का साथ छोडकर बाह्य व्यवहारादि के साथ संबंध जोड़ना तो अनंत क्लेश, दु:ख का कारण है।

समस्त प्रकारके बाह्य संयोग मन-वचन-कायपूर्वक स्थापित होते हैं; अत: वे सभी मुझे दु:खदायक हैं, दु:ख के कारण हैं; इसलिये उन समस्त संबंधों का त्यागकर मैं अपने स्वभाव के साथ संबंध जोड़ता हूँ; क्योंकि जीव स्वयं ही अपने दु:खों को दूर करने में समर्थ है।

मन-वचन-काय के निमित्त से अपने आत्मप्रदेशों में होनेवाले कम्पन को अपने आत्मस्वभाव के अवलंबन से रोककर, अब मैं अपने स्वरूप के साथ संबंध जोड़ता हूँ। इसप्रकार ज्ञानी परद्रव्यों के साथ संबंध न जोड़कर अपने स्वभाव के साथ संबंध जोडता है और दु:खों का नाशकर सुख की प्राप्ति करता है, इसीका नाम धर्म है। **(क्रमश:)**

आगम क्या है ?

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार की आठवीं गाथा पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्म-रसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

गाथा मूलत: इसप्रकार है -

तस्स मुहुग्गदवयणं पुव्वावरदोसविरहियं सुद्धं ।
आगममिदि परिकहियं तेण दु कहिया हवंति तच्चत्था ।।8।।

पूर्वोक्त परमात्मा के मुख से निकली हुई पूर्वापर विरोध रहित, तत्त्वार्थों का कथन करनेवाली शुद्धवाणी को आगम कहा गया है।

त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञ परमात्मा अरहंतदेव के मुखकमल में से निकली हुई वाणी को आगम कहते हैं। वह वाणी पूर्वापर दोष से रहित होती है; पहले पुण्य को बंध का कारण कहे और पश्चात् उसी पुण्य को मोक्ष का भी कारण कहे ह्न इसप्रकार आगे-पीछे के कथन में विरोध नहीं होता। चारों अनुयोगों का कथन पूर्वापर विरोध रहित ही होता है।

कभी तो दया को पुण्य कहे और कभी दया से धर्म बताये ह्न ऐसी भगवान की वाणी नहीं होती है। वह तो पूर्वापर विरोधरहित ही होती है। जिसमें ऐसा विरोध हो, वह सर्वज्ञ की वाणी नहीं है। पर्याय को अन्तर्मुख करके जिन्होंने वीतरागता और सर्वज्ञता प्रकट की, उनकी वाणी में परस्पर विरोधी कथन होता ही नहीं है ह्न यह सर्वज्ञ की वाणी का प्रथम लक्षण है।

जगत के द्रव्य-गुण-पर्याय सभी स्वतंत्र है ह्न ऐसा भी कहे, और फिर ऐसा कहे कि दूसरे के कारण पर्याय होती है अर्थात् पर्याय का कर्त्ता कोई अन्य है तो इसमें पूर्वापर दोष आता है ह्न ऐसी वाणी वीतराग की नहीं होती। चैतन्यस्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है और राग के कारण भी सम्यग्दर्शन होता है ह्न ऐसा विरुद्ध कथन सर्वज्ञ की वाणी में नहीं होता।

द्रव्यानुयोग में कथन आता है कि कोई किसी दूसरे का कुछ भी नहीं कर

सकता, शरीर की क्रिया को आत्मा नहीं कर सकता तथा चरणानुयोग में ऐसा कहा कि 'देखकर चलो' वहाँ उसका प्रयोजन शरीर की क्रिया को आत्मा कर सकता है अर्थात् शरीर को चला सकता है ह्न ऐसा बताना नहीं है; किन्तु प्रमाद के अशुभभाव न हो जावे अर्थात् प्रमाद से बचाने के लिये यह कथन किया है। इसप्रकार इन दोनों कथनों में विरोध नहीं आता; अपितु सुमेल ही है।

सर्वज्ञदेव की वाणी में चाहे जितनी अपेक्षाओं से कथन आवे, फिर भी कहीं विरुद्धता नहीं होती अर्थात् वह वाणी दोष रहित एवं शुद्ध है। शुद्ध चैतन्य आत्मा का अवलम्बन लेने का निर्देश करनेवाली होने के कारण वह वाणी भी शुद्ध है।

इसलिये हे जीव तू राग, निमित्त इत्यादि का अवलम्बन छोड़ और निज शुद्ध चिदानन्द कारणपरमात्मा का अवलम्बन कर। ऐसी वीतराग की वाणी स्वभाव का अवलम्बन कराने से शुद्ध है। ऐसी निर्दोष और शुद्धवाणी को आगम कहते हैं, इसी लक्षण से शास्त्र की परीक्षा करनी चाहिये। जो पराश्रय से लाभ बतावे, राग से धर्म मनावे, पर्याय की पराधीनता कहे; वह वाणी निर्दोष नहीं, शुद्ध नहीं और आगम भी नहीं है।

सर्वज्ञदेव द्वारा कथित वाणी ही निर्दोष और शुद्ध है। वह वाणी तत्त्वार्थों का कथन करती है। सप्त तत्त्व, द्रव्य-गुण-पर्याय इत्यादि तत्त्वार्थ को वीतराग-वाणी ही कहती है। इन सबका यथार्थ स्वरूप अन्यत्र कहीं भी नहीं है ह्न ऐसे आगम को पहिचाने बिना हर किसी के लिखे हुये कुशास्त्रों को माने तो उसे आगम की व्यवहार श्रद्धा भी नहीं है। सर्वज्ञदेव ने जो परमागम कहा और जो संतों की परम्परा में चला आया है, वही सच्चा परमागम है ह्न ऐसा परमागम ही तत्त्वार्थ का यथार्थ स्वरूप प्रतिपादन करने में समर्थ है, अन्य नहीं।

धर्मी की वाणी अनेक भावगर्भित गंभीर होती है। जहाँ सर्वज्ञता प्रकट हुई, वहाँ वाणी की रचना भी उत्कृष्ट होती है। यद्यपि वाणी का कर्त्ता आत्मा नहीं है, फिर भी ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है कि जहाँ आत्मा की पवित्रता प्रकट हुई वहाँ वचन भी गम्भीर भावयुक्त ही निकलते हैं। सर्वज्ञ की वाणी में चाहे जितना विस्तार हो; परन्तु कहीं भी पूर्वापर विरोध नहीं होता।

भगवान रागरहित हैं और उनकी वाणी भी हिंसादि पापक्रिया रहित होती है। राग भी निश्चय से पाप ही है। सर्वज्ञ की वाणी वीतरागता बतानेवाली है ह्न वह राग रहित है, राग का ज्ञान तो करवाती है, किन्तु राग से लाभ नहीं मनवाती। अन्य कुशास्त्र तो पापसूत्र हैं और वे राग से धर्म होना मनवाते हैं, इसलिये हिंसादि पापक्रिया सहित हैं। सर्वज्ञ की वाणी चिदानन्द स्वभाव के आश्रय से ही कल्याण होना बतलाती है, रागाश्रय से कल्याण होना नहीं बताती। वह वाणी हिंसादि पाप क्रियाओं से रहित है; अत: शुद्ध है।

व्यवहार के आश्रय से वास्तव में लाभ होता है ह्न ऐसा कहे, तो वह भी पाप क्रिया में समाविष्ट हो जाता है। सर्वज्ञ की वाणी राग का ज्ञान करवाती है; किन्तु उससे लाभ होता है ह्न ऐसा नहीं कहती। राग का पोषण हो ह्न ऐसा वीतराग वाणी का उपदेश नहीं है, इसलिये वह शुद्ध है। भगवान के स्वयं तो राग का अभाव हो ही चुका है, साथ ही उनकी वाणी में भी रागपोषक उपदेश नहीं है; अत: वह वाणी भी शुद्ध है।

अब वह वाणी कैसी है, यह विशेषरूप से कहते हैं। भगवान की वाणी भव्य जीवों को कर्णरूपी अँजलिपुट से पीने योग्य अमृत है। वाणी है तो उसके श्रोता भी हैं, इसप्रकार वाणी के समक्ष श्रोता को रखा। जिसप्रकार हाथ की अँजलि से भर-भर कर पानी पीते हैं; उसीप्रकार भव्यजीवों के लिये कर्णरूपी अँजलिपुट भर-भर कर भगवान की वाणीरूपी अमृत पीने योग्य है। भगवान की वाणी झेलनेवाले श्रोतागण न हों ह्न ऐसा नहीं बनता। भगवान वक्ता हैं और भव्यजीव उनकी वाणी को श्रवण करके झेलते हैं ह्न ऐसा कहा।

परमागम मुक्तिसुन्दरी के मुख का दर्पण है अर्थात् जो जीव आगमज्ञान करे उसे मुक्तिसुन्दरी का मुख दिखायी पड़ता है। भगवान के मुख से निकली हुई वाणी मुक्ति का मुखकमल दिखाने के लिये दर्पणवत् है। भगवान के मुख से वाणी निकली, उसके समक्ष मुक्ति के मुख की बात की। भगवान की वाणी पहिचाननेवाले को अपने मुक्ति की नि:शंकता हो जाती है; इसलिये वह वाणी मुक्ति का मुख दिखानेवाली दर्पण के समान है। वीतराग वाणी के अतिरिक्त कहीं भी मुक्ति या मुक्ति का मार्ग नहीं है।

वह परमागम संसारसमुद्र के महाभँवर में निमग्न समस्त भव्यजीवों को हस्तावलम्बन देता है। जिनवाणी संसार में पड़े हुये जीवों को आत्मस्वरूप बतलाती है। इसलिये मोक्षमार्ग में ले जाने के लिये वह वाणी हस्तावलम्बन (हाथ का सहारा) है। किन्तु जो स्वयं पहिचाने, उसे हस्तावलम्बन कहा जाये। 84 के अवताररूपी सागर में डूबे हुये भव्यजीवों को संसार से पार होने के लिये जिनवाणी हस्तावलम्बन है।

फिर वह परमागम कैसा है ? सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का शिखामणी है। परमागम सहजवैराग्यरूपी महल की शिखामणी के समान है; क्योंकि परमागम का तात्पर्य सहज वैराग्य की पुष्टता है।

परमागम किसी परद्रव्य में प्रेम नहीं कराता; अपितु समस्त परपदार्थों से सहज वैराग्य कराता है। चैतन्य के अन्तरंग परिणमन में सहजरूप से ही राग का अभाव हो जाता है अर्थात् स्वभाव में एकाग्रता होने पर राग के अभावरूप वैराग्य सहज ही परिणमित हो जाता है ह्न ऐसे सहजवैराग्यरूपी महल के शिखर के शिखामणी रूप यह परमागम है। अकेला वीतरागभाव ही परमागम में भरा है। परमागम स्वभाव की पूर्णता का वर्णन तो करता ही है, साथ ही पर के प्रति राग के अभावरूप अपार वीतरागता का वर्णन भी करता है।

विषयों में सुख हो अथवा राग हो तो कोई बाधा नहीं ह्न ऐसा कहनेवाली वीतराग की वाणी नहीं है। वीतराग के वचन कहीं भी किसी भी काल में राग के सूक्ष्मांश का भी पोषण नहीं करते; वह तो सहजवैराग्य की उत्कृष्टता का ही पोषण करते हैं। जहाँ ज्ञानी के भोग को निर्जरा का हेतु कहा हो, वहाँ राग के पोषण कराने का प्रयोजन नहीं है; अपितु स्वभाव दृष्टि के जोर-बल को बताने का प्रयोजन है अर्थात् वैराग्य के ही पोषण का अभिप्राय है।

परमागम तो चैतन्यस्वभाव का भान कराकर उसमें एकाग्रता कराते हैं और अनंत परपदार्थों का अपने में अभाव बताकर उनसे वैराग्य कराते हैं। वीतराग-वाणी तो तीर्थंकरों और केवली भगवन्तों से भी उदासीनता कराकर स्वभाव में एकाग्र होने का आदेश देती है। परमागम तो वीतराग की वाणी के प्रति भी वैराग्य कराता है। इसप्रकार परमागम सहजवैराग्य करानेवाला है; अत: वह सहजवैराग्यरूपी महल की चोटी के ऊपर का रत्न है। **(क्रमश:)**

शक्तियों का संग्रहालय : भगवान आत्मा

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम समयसार नामक ग्रन्थाधिराज पर परमपूज्य आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने 'आत्मख्याति' नामक संस्कृत टीका लिखी है। उसके अन्त में परिशिष्ट के रूप में अनेकान्त का विस्तृत वर्णन करते हुये आत्मा की 47 शक्तियों का वर्णन किया है, साथ ही अनेक कलश भी लिखे हैं। उन पर गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने समय-समय पर अतिमहत्त्वपूर्ण प्रवचन किये हैं, जो पाठकों के लाभार्थ क्रमश: प्रस्तुत हैं।

(गतांक से आगे .....)

पुन: इसी अर्थ को 274 वें काव्य में कहते हैं -

(पृथ्वी)

कषायकलिरेकत: स्खलति शांतिरस्त्येकतो
भवोपहतिरेकत: स्पृशति मुक्तिरप्येकत: ।
जगत्त्रितयमेकत: स्फुरति चिच्चकास्त्येकत:
स्वभावमहिमात्मनो विजयतेऽद्भुतादद्भुत: ।।

(रोला)

एक ओर से शांत मुक्त चिन्मात्र दीखता।
अन्य ओर से भव-भव पीड़ित राग-द्वेषमय।।
तीन लोक में भासित होता विविध नयों से।
अहो आतमा का अद्भुत यह वैभव देखो।।

एक ओर से देखने पर कषायों का क्लेश दिखाई देता है और एक ओर से देखने पर शांति (कषायों के अभावरूप शांत भाव) है; एक ओर से देखने पर भव की पीड़ा दिखाई देती है और एक ओर से देखने पर संसार के अभाव रूप मुक्ति भी स्पर्श करती है; एक ओर से देखने पर तीन लोक स्फुरायमान होते हैं, प्रकाशित होते हैं और एक ओर से देखने पर केवल एक चैतन्य ही शोभित होता है ह्न ऐसी आत्मा की अद्भुत से भी अद्भुत स्वभाव महिमा जयवन्त वर्तती है।

आत्मा का अनेकान्तमय स्वभाव सुनकर अन्यवादियों को अत्यन्त आश्चर्य होता है, उन्हें इस बात में विरोध भासित होता है। वे ऐसे अनेकान्तमय स्वभाव की बात को अपने चित्त में न तो समाविष्ट कर सकते हैं और न सहन ही कर सकते हैं। यदि कदाचित उन्हें श्रद्धा हो तो प्रथम अवस्था में भारी अद्भुतता मालुम होती है कि ह्न अहो ! यह जिनवचन महा उपकारी है, वस्तु के यथार्थ स्वरूप को बतानेवाले हैं। मैंने अनादि काल ऐसे यथार्थ स्वरूप के ज्ञान बिना ही अपना जीवन व्यतीत कर दिया है। इसप्रकार आश्चर्यपूर्वक श्रद्धान करते हैं।

यह आत्मा एक वस्तु है। धर्मी को साधक अवस्था में इस आत्मा का स्वरूप कैसा भासित होता है। इसकी यहाँ बात करते हैं।

जब पर्याय की ओर से देखते हैं तो आत्मा में कषाय की आकुलता एवं क्लेश ही क्लेश दिखाई देता है और द्रव्यदृष्टि से देखने पर भगवान आत्मा शांति का पिण्ड दिखाई देता है। निज अकषाय स्वभाव की दृष्टि से देखने पर प्रभु आत्मा शांति का पिण्ड है ह्न ऐसा दिखाई देता है। स्वभाव को देखनेवाली दृष्टि भी कषाय के अभावरूप शांतभावमय है।

जीव की पर्याय में नरनारकादि गतियाँ हैं, उनके राग से जीव मारा जाता है, पीड़ित होता है ह्न इसप्रकार पर्यायों की ओर से देखें तो नर-नारकादि गति संबंधी पीड़ा दिखाई देती है। दूसरे द्रव्यस्वभाव से देखें तो द्रव्य तो भाव के अभावस्वरूप मुक्त है यदि पर्याय का लक्ष छोड़ दे तो वस्तु मुक्त ही है अर्थात् मुक्तस्वभावी आत्मा का आश्रय लेने पर मैं मुक्त ही हूँ ह्न ऐसा पर्याय में भासित होता है। यही आत्मा का अद्भुत स्वभाव है।

अहा ! साधकदशा में धर्मी को एक ओर भव दिखाई देता है तो दूसरी ओर मुक्ति दिखाई देती है। एक ओर गति दिखाई देती है तो दूसरी ओर गति रहित स्वभाव दिखाई देता है। जैनदर्शन ऐसा अनेकान्तमय है। यहाँ कहते हैं कि एक ओर से अपनी ज्ञान की दशा में भिन्न तीन काल तीन लोक जानने में आते हैं तथा दूसरी ओर से अर्थात् अन्तर्मुख होकर देखने पर केवल एक चैतन्य ही प्रकाशित होता है। पर्याय में त्रिकाली द्रव्य को देखने पर आत्मा के अस्तित्व में एक चैतन्य ही भासित होता है।

अहा ! यहाँ ऐसा नहीं कहा कि ह्न एक ओर कर्म, नोकर्म, स्त्री, पुत्र, महल,

मकान दिखाई देते हैं और दूसरी ओर आत्मा दिखता है; क्योंकि ये सब तो आत्मा के अस्तित्व में है ही नहीं। यहाँ तो स्वभाव से पूर्ण अपनी वस्तु का भान हुआ वहाँ साधक को अर्थात् धर्मी को एक ओर वर्तमान भव पीड़ाकारक दिखाई देता है और दूसरी ओर भवरहित अपना भगवान आत्मा भासित होता है। ऐसा ज्ञान में भासित होते हुये धर्मी को निश्चय होता है कि अब हमारे भव एवं भव का भाव नहीं रहेगा।

अहा ! धर्मी ऐसा नहीं मानता कि मैंने दया पाली, व्रत पाले, ज्ञान लिया, वर्तमान में जो अल्प राग होता है; वह धर्मी को पर ज्ञेयरूप भासता है। इसमें उसे स्वामित्व भासित नहीं होता।

एक समय की कलुषता बाधकभाव स्वयं से है, कोई अन्य से बाधित नहीं होता तथा एकसमय की शुद्धता साधकभाव भी स्वयं से है। असहाय है, किसी से बाधित नहीं होता। निजस्वभाव की महिमा ऐसी अद्भुत और गंभीर है। यहाँ प्रमाण ज्ञान कराने के लिये पाँचों भावों को जीवतत्त्व कहा है।

भाई ! तू आत्मतत्त्व है। तेरा अस्तित्त्व तुझसे है, क्षणिकपने परिणमना, रागादिपने परिणमना, तेरा तुझमें है अन्य में नहीं, अन्य से नहीं और दूसरों का तुझमें नहीं ह्न ऐसे तेरे अस्तित्व की परमअद्भुत बात है। **(क्रमशः)**

निर्विकल्प अतीन्द्रिय आनंद ...

आत्मानुभूतिप्राप्त पुरुषों की अन्तरपरिणति अनुभूति के काल में अत्यन्त शांत एवं ज्ञानानन्दमय होती है। दृष्टि के अन्तर्मुख होते ही समस्त शुभाशुभ विकल्पजाल प्रलय को प्राप्त हो जाते हैं। अन्तर में निर्विकल्प अतीन्द्रिय आनंद का ऐसा दरिया उमड़ता है कि समाता ही नहीं। वे आत्मानंद में मग्न हो जाते हैं। उनका ज्ञान अन्तरोन्मुखी होने से एवं आनंद पंचेन्द्रियों के विषयों से उत्पन्न न होने से अतीन्द्रिय व स्वाश्रित होता है।

वह ज्ञानानन्द की दशा ऐसी होती है कि बाहर की अनंत प्रतिकूलतायें और अनुकूलतायें उसे भग्न नहीं कर सकती। उन्हें उनकी खबर ही नहीं पड़ती वे तो अपने में ऐसे मग्न हो जाते हैं कि लोक की कोई भी घटना उनके आनंद सागर में भँवर पैदा नहीं कर सकती। उनका वह आनंद सिद्धों के आनंद के समान ही है। यद्यपि उसमें अभी अपूर्णता है, सिद्धों के आनंद का अनंतवाँ भाग ही है; तथापि है उसी जाति का। **ह्न मैं कौन हूँ, पृष्ठ – 16**

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : श्रुतज्ञान में ही नय क्यों होते हैं, अन्य ज्ञानों में नय क्यों नहीं होते ?

उत्तर : मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञान ह्न इन पाँच प्रकार के ज्ञानों में अवधि-मन:पर्यय और केवलज्ञान तो प्रत्यक्ष है तथा मति-श्रुत ज्ञान परोक्ष है। नय परोक्षज्ञान है। प्रत्यक्षज्ञान का अंश तो प्रत्यक्ष ही होता है; अत: उसमें नय नहीं होते। केवलज्ञान पूर्ण स्पष्ट प्रत्यक्ष है तथा अवधि और मन:पर्ययज्ञान भी अपने-अपने विषय में प्रत्यक्ष है; अत: इन तीनों प्रत्यक्ष ज्ञानों में तो परोक्षरूप नय नहीं होते। मतिज्ञान यद्यपि परोक्ष है; किन्तु उसका विषय अल्प है, वह मात्र वर्तमान पदार्थ को ही प्रत्यक्ष करता है। सर्वक्षेत्र व सर्वकालवर्ती पदार्थों को वह ग्रहण नहीं करता; इसलिये उसमें नय नहीं होते, क्योंकि जो सम्पूर्ण पदार्थ के ज्ञानपूर्वक उसमें भेद करके जानें, उसे नय कहते है।

श्रुतज्ञान अपने विषयभूत समस्त क्षेत्र-कालवर्ती पदार्थों को परोक्षरूप से ग्रहण करता है, इसलिये उसमें ही नय पडते हैं। श्रुतज्ञान में भी जितना स्व-संवेद्य प्रत्यक्ष हो गया है, उतना तो प्रमाण ही है और जितना परोक्षपणा रह गया है, उसमें नयविभाग होता है। श्रुतज्ञान सर्वथा परोक्ष ही नहीं है, स्व-संवेदन में वह आंशिक प्रत्यक्ष भी है। ऐसे स्व-संवेदन पूर्वक ही सच्चे नय होते हैं। श्रुतज्ञान केवलज्ञान के समान सकल पदार्थों को भले ही न जाने; किन्तु अपने विषय के योग्य पदार्थों को सकल काल-क्षेत्र सहित पूरा ग्रहण करता है और उसमें एकदेशरूप नय होते हैं।

प्रश्न : श्रुतज्ञान त्रिकाली पदार्थों को परोक्ष जानता है, इसलिये नय उसमें ही होते है ह्न ऐसा कहा है; क्या इसमें कोई रहस्य है ?

उत्तर : हाँ ! रहस्य है और सूक्ष्म रहस्य है। इसमें से ऐसा न्याय निकलता है कि द्रव्यार्थिक नय मुख्य है और पर्यायार्थिक नय गौण है। त्रिकालीपदार्थ का ज्ञान हो, तभी उसके अंश के ज्ञान को पर्यायार्थिक कहा जाता है। जब द्रव्यार्थिकनय से त्रिकाली द्रव्य को जाना, तब उसके पर्यायरूप अंश को जाननेवाले ज्ञान को पर्यायार्थिक नय कहा जाता है। त्रिकाली द्रव्य के सन्मुख होकर उसको जाना, तभी उसके अंश के ज्ञान को व्यवहारनय कहा गया। त्रिकाली के ज्ञान बिना अंश का ज्ञानरूप व्यवहार नहीं होता।

इसप्रकार यह बात सुनिश्चित हुई कि निश्चय बिना व्यवहार नहीं और द्रव्य के ज्ञान बिना व्यवहार नहीं। व्यवहारनय तो अंश को जानता है; किन्तु अंश किसका ? त्रिकाली पदार्थ का; अत: त्रिकाली पदार्थ के बिना उसके अंश का ज्ञान यथार्थ नहीं होता। श्रुतज्ञान भी त्रिकाली द्रव्य की तरफ झुके, तो उसमें नय होते हैं। त्रिकाली के ज्ञान बिना मात्र पर्याय या भेद को जाना जाय तो वहाँ पर्यायबुद्धि का एकान्त हो जाता है, मिथ्यात्व हो जाता है, उसमें नय नहीं होते। आत्मा नित्य है, शुद्ध ज्ञानघन है ह्न ऐसा जाननेवाला नय त्रिकाली पदार्थ के ज्ञान बिना नहीं होता तथा शुद्धता, नित्यता आदि को जाने बिना अकेली अशुद्धता, अनित्यता को जाना जाय तो भी एकान्त मिथ्यात्व हो जाता है, वहाँ व्यवहारनय भी नहीं होता।

प्रश्न : मति-श्रुतज्ञानी आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं ह्न ऐसा कहा, किन्तु तत्त्वार्थसूत्र में तो मति-श्रुतज्ञान को परोक्ष कहा है ?

उत्तर : प्रत्यक्ष जानना तो आत्मा का स्वभाव है। अनुभव में सम्यक्त्वी आत्मा को (अनुभव की अपेक्षा से) प्रत्यक्ष जानता है, जानने की अपेक्षा परोक्ष है।

प्रश्न : सच्चा और सर्वांगीण होने पर भी प्रमाणज्ञान पूज्य नहीं है और निश्चयनय पूज्य है; इसका क्या आशय है ?

उत्तर: आत्मद्रव्य द्रव्य-पर्यायस्वरूप है; इसप्रकार प्रथम ज्ञान में ज्ञात करना चाहिये। भले ही यह भेदकथन का ज्ञान सम्यग्ज्ञान नहीं है, तथापि प्रथम यह जानना कि वह ज्ञान का अंग है; सम्यक् होने से पहले वह आता है। द्रव्य-गुण-पर्यायसहितवाला द्रव्य, सम्पूर्ण वस्तु प्रमाणज्ञान का विषय है; प्रथम ज्ञान में उसको जानना चाहिये। प्रमाणज्ञान में द्रव्य-पर्याय दोनों आते है; अत: वह व्यवहारनय का विषय होने से पूज्य नहीं है। निश्चयनय का विषय एक त्रिकाली शुद्धात्मा है; इसलिये निश्चयनय को पूज्य कहा है। द्रव्य-गुण-पर्याय में वस्तु व्याप्त होनेपर भी शुद्धनय एकस्वरूप शुद्धात्मा को ही बतलाता है। वह कहता है कि ह्न एक, प्रत्यक्ष, प्रतिभासरूप, सकल, निरावरण, नित्य, निरंजन, निजशुद्धात्मद्रव्य ही मैं हूँ। द्रव्य-गुण-पर्यायात्मक वस्तु होने पर भी आश्रय करने योग्य तो मात्र शुद्धात्मा ही एक है। यह निर्णय भी शुद्धनय के द्वारा ही होता है।

प्रश्न: प्रमाण ध्रुवद्रव्य से बड़ा है या छोटा ?

उत्तर : प्रमाण में व्यवहार का निषेध न होने के कारण वह पूज्य नहीं है, किन्तु ध्रुवद्रव्य आश्रययोग्य होने से वह पूज्य है, अत: बड़ा है। मात्र त्रिकाली भगवान (ध्रुव) दृष्टि का विषय होने से बड़ा है और पूज्य है। ●

समाचार दर्शन –

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के निर्देशन में ह्न

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न

आत्मसाधना केन्द्र दिल्ली : आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के सदुपदेश एवं पुण्य प्रभावना योग से निर्मित भव्य एवं विशाल अध्यात्मतीर्थ आत्मसाधना केन्द्र में विराजित जिनबिम्बों की मंगल प्रतिष्ठा विधि श्री 1008 आदिनाथ दि. जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के माध्यम से 7 से 13 फरवरी,05 तक शुद्ध आम्नायानुसार अनेकानेक आयोजनों सहित सम्पन्न हुई।

महोत्सव का प्रारंभ श्री सुरेन्द्र जैन अशोक जैन परिवार राजपुर रोड दिल्ली के करकमलों द्वारा ध्वजारोहण के साथ हुआ।

प्रतिदिन प्रात: आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के सी.डी. प्रवचन हुये।

इस अवसर पर ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल, डॉ. उत्तमचन्दजी जैन सिवनी, पण्डित विमलदादा झांझरी उज्जैन, पण्डित वीरेन्द्रकुमारजी आगरा, पण्डित राजेन्द्रकुमारजी जबलपुर, पण्डित प्रकाशदादा मैनपुरी, ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना एवं डॉ. सुदीप जैन के प्रवचनों का लाभ समस्त आत्मार्थियों ने लिया। बच्चों की कक्षा लेने हेतु बाल मनोविज्ञान की विशेषज्ञ डॉ. शुद्धात्मप्रभाजी टडैया, मुम्बई विशेषरूप से पधारीं।

इस अवसर पर श्री कानजीस्वामी की 116 वीं जन्मजयन्ती के उपलक्ष में 116 धातु ध्वजाओं की स्थापना, देश के सुप्रसिद्ध तत्त्वप्रचार के लिये निर्मित 8 केन्द्रों (1.सोनगढ़ 2. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर 3. देवलाली ट्रस्ट 4. परमागम ट्रस्ट, सोनागिरि 5. मंगलायतन-अलीगढ़ 6. पौन्नूरमलै-कर्नाटक 7. सिद्धायतन- द्रोणगिरि 8.चैतन्य धाम, गुजरात) के चित्रों का अनावरण, पाँच विशाल शिखरों पर ध्वज एवं कलश स्थापना के अतिरिक्त 143 लघु शिखरों पर पंचपरमेष्ठी के गुणस्वरूप 143 कलशों की स्थापना, मुख्य मंदिरों में 64-64 चंवरों की स्थापना, डी.पी. कौशिक मुजफ्फरनगर द्वारा गुरुदेवश्री के जीवन पर आधारित **परिवर्तन** नाटिका एवं सांस्कृतिक मण्डल मण्डलेश्वर द्वारा **सत्पथ की ओर सती अंजना** नाटिका का मंचन आदि कार्यक्रम सम्पन्न हुये।

महोत्सव में भगवान आदिनाथ के माता-पिता बनने का सौभाग्य श्रीमती मणिदेवी बाबूलाल जैन विवेक विहार को मिला। सौधर्म इन्द्र एवं शची इन्द्राणी श्री विमलकुमार जैन-श्रीमती कुसुम जैन विवेक विहार तथा कुबेर इन्द्र-इन्द्राणी श्री अजितप्रसाद जैन-सुशीला जैन राजपुर रोड थे।

सम्पूर्ण प्रतिष्ठा विधि बाल ब्र.जतीशचन्दजी शास्त्री के निर्देशन एवं प्रतिष्ठाचार्यत्व में ब्र. धन्यकुमारजी बेलोकर, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री, ब्र. सुकुमारजी झांझरी, पण्डित मधुकरजी, पण्डित शांतिकुमारजी पाटील, पण्डित ऋषभजी शास्त्री ने सम्पन्न कराये।

इस अवसर पर पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट का 1 लाख, 94 हजार रुपयों का सत्साहित्य एवं 21 हजार 110 रुपयों की सी.डी ऑडियो कैसिट्स के अतिरिक्त अन्य संस्थाओं का भी लाखों रुपयों का सत्साहित्य एवं सी.डी बिके तथा हजारों लोग विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के आजीवन एवं वार्षिक सदस्य बनें। **– आदीश जैन**

वार्षिकोत्सव सम्पन्न

छिंदवाड़ा (म.प्र.) : यहाँ श्री पार्श्वनाथ दि. जैन मन्दिर नई आबादी गांधीगंज के प्रथम वार्षिकोत्सव पर दिग. जैन मुमुक्षु मण्डल एवं अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन के संयुक्त तत्त्वावधान में विविध धार्मिक साहित्यिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन हुआ।

इस अवसर पर प्रात: ध्वजारोहण के पश्चात् पंचपरमेष्ठी विधान का आयोजन किया गया। दोपहर में बाल ब्र. संवेगी केसरीचन्दजी धवल एवं डॉ. उत्तमचन्दजी जैन सिवनी के मार्मिक प्रवचन हुये। रात्रि में पण्डित विरागजी शास्त्री जबलपुर एवं पण्डित ऋषभजी शास्त्रीके निर्देशन में चतुर्गति के दुखों पर आधारित नाटिका का मंचन हुआ। **ह्न दीपकराज जैन**

पण्डित अभयकुमारजी का विदेश कार्यक्रम

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल की तरह ही उनके शिष्य पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री, देवलाली भी धर्म प्रचारार्थ दिनांक 27 मई से 7 अगस्त, 2005 तक अमेरिका जा रहे हैं। उनका वहाँ का कार्यक्रम इसप्रकार है ह्न दिनांक 28 मई से 2 जून तक डलास, 3 जून से 8 जून ह्यूस्टन, 9 जून से 13 जून तक पिट्सबर्ग, 14 जून से 19 जून तक क्लीवलैण्ड, 20 जून से 27 जून तक वाशिंगटन, 28 जून से 4 जुलाई तक सान फ्रांसिस्को, 5 जुलाई से 11 जुलाई तक सियेटल, 12 से 18 जुलाई तक मियामी, 19 से 25 जुलाई तक शिकागो, 26 जुलाई से 7 अगस्त तक टोरन्टो। ज्ञातव्य है कि अमेरिका प्रवास के दौरान जिन स्थानों पर डॉ.भारिल्ल ठहरेंगे उन्हीं स्थानों पर पण्डित अभयकुमारजी भी ठहरेंगे। अतिरिक्त स्थानों हेतु सम्पर्क सूत्र निम्नलिखित हैं ह्न

ह्यूस्टन में भूपेश शेठ-281-261-4030, पिट्सबर्ग में शांतिलाल मोहनोट-721-325-2058, क्लीवलैंड में कुशल बैद-440-339-9519, सियेटल में प्रकाश जैन-425-881-6143, टोरंटो में रीमा अग्रवाल/संजय जैन-905-686-5245 ●

अब प्रात: 6.35 पर ...

साधना चैनल पर प्रतिदिन प्रसारित हो रहे डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के प्रवचनों का समय अब प्रात: 6.45 के बजाय 6.35 बजे हो गया है। अत: समस्त साधर्मीजन समय का ध्यान रखते हुये प्रवचनों का लाभ लें।

साधना चैनल आपके यहाँ न आता हो तो श्री पंकज जैन (साधना चैनल) से मोबाइल नं. 09312506419 पर सम्पर्क करें।

डॉ. भारिल्ल का 2005 में विदेश कार्यक्रम

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी धर्मप्रचारार्थ विदेश जा रहे हैं। अमेरिका की यह उनकी 22 वीं विदेश यात्रा है। उनका नगरवार कार्यक्रम निम्नानुसार है। जिन भारतवासी बन्धुओं के परिवार या सम्बन्धी निम्न स्थानों पर रहते हों, वे उन्हें सूचित कर दें। उनकी सुविधा के लिए वहाँ के फोन नं. एवं फैक्स नं. यहाँ दिये जा रहे हैं, जिनके यहाँ डॉ. भारिल्ल ठहरेंगे।

क्र.	शहर	सम्पर्क-सूत्र	दिनांक
1.	मियामी	महेन्द्र शाह (घर) 305-595-3833 (ऑ.)305-371-2149 E-mail : bhitap@bellsouth.net	1 से 6 जून
2.	ऑरलैण्डो	महेन्द्र शाह (घर) 305-595-3833 (ऑ.)305-371-2149 E-mail : bhitap@bellsouth.net	7 से 12 जून
3.	डलास	अतुल खारा (घर) 972-867-6535 (ऑ.)972-424-4902(फै.)972-424-0680 E-mail : insty@verizon.net	13 से 19 जून
4.	शिकागो	निरंजन शाह 847-330-1088 डॉ. विपिन भायाणी (घर) 815-939-0056 (ऑ.) 815-939-3190 (फै.) 815-939-3159	20 से 27 जून
5.	सान-फ्रांसिस्को	हिम्मत डगली (घर) 510-745-7468 अशोक सेठी (घर) 408-517-0975 E-mail : ashok_k_sethi@yahoo.com	28 जून से 4 जुलाई
6.	अटलांटा	राजू शाह (घर) 770-495-7911 मधुबेन शेठ 404-325-0627 E-mail : shethmadhu@yahoo.com	5 से 11 जुलाई
7.	वाशिंगटन	नरेन्द्र जैन (घर) 703-426-4004 (फै.) 703-321-7744 E-mail : jainnarendra@hotmail रजनीभाई गोसालिया 301-464-5947 E-mail : bakliwalatul@hotmail.com	12 से 24 जुलाई

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित

३९ वाँ शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर, कोल्हापुर (महाराष्ट्र) में

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा संचालित 39 वाँ वीतराग-विज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर इस वर्ष शुक्रवार, दिनांक 13 मई से सोमवार, 30 मई 2005 तक कोल्हापुर में होना निश्चित हुआ है। **इस शिविर में मुख्यरूप से धार्मिक अध्ययन करानेवाले बन्धुओं (अध्यापकों) एवं मुमुक्षु भाईयों को शिक्षण-प्रशिक्षण विधि से प्रशिक्षित किया जायेगा।**

इस अवसर पर डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल, डॉ. उत्तमचन्दजी जैन, पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री, ब्र. यशपालजी जैन, पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील, पण्डित राजेन्द्रकुमारजी जैन आदि विद्वानों के प्रवचनों और कक्षाओं का लाभ प्राप्त होगा। इनके अतिरिक्त शिक्षण-प्रशिक्षण में सहयोग देनेवाले अनेक प्रशिक्षित अध्यापक भी पधारेंगे। जिनके द्वारा बालकों, प्रौढ़ों और महिलाओं के लिये शिक्षण-कक्षाओं की व्यवस्था की जायेगी।

बालबोध-प्रशिक्षण में प्रवेश पाने के लिये बालबोध पाठमाला भाग - 1, 2, 3 की तथा प्रवेशिका-प्रशिक्षण में प्रवेश पाने के लिये वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग - 1, 2, 3 की प्रवेश प्रतियोगितात्मक लिखित परीक्षा दि. 12 मई को दोपहर 2 बजे कोल्हापुर में ली जावेगी, जिसमें प्रथम श्रेणी के अंक प्राप्त करना आवश्यक होगा। अत: प्रवेशार्थी उक्त पुस्तकों की पूरी तैयारी करके आवें।

ध्यान रहे, प्रवेशिका प्रशिक्षण में उन्हें ही प्रवेश दिया जायेगा, जो बालबोध प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हैं।

आपके यहाँ से कितने व कौन-कौन भाई-बहिन शिविर में पधार रहे हैं, इसकी सूचना निम्नांकित पतों पर अवश्य भेजें; ताकि आपके आवास एवं भोजनादि की समुचित व्यवस्था की जा सके। **उत्तर भारत से आनेवालों के लिये उनके अनुकूल भोजन की समुचित व्यवस्था रहेगी।**

दक्षिण-मध्य रेल्वे में कोल्हापुर स्टेशन **छत्रपति शाहू टर्मिनल** के नाम से जाना जाता है। विस्तृत समय सारिणी के लिये जैनपथप्रदर्शक का अप्रैल (प्रथम) अंक देखें।

कोल्हापुर का पता ह्न
सर्वोदय स्वाध्याय समिति
C/o श्री कैलाशचन्दजी जैन
'चैतन्य संकुल', शाहुपुरी पहली गली,
कोल्हापुर (महाराष्ट्र) 416001
फोन : (0231) 2653384

ह्न जयपुर का पता
डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
श्री टोडरमल स्मारक भवन,
ए-4, बापूनगर, जयपुर (राज.)
फोन-(0141) 2707458, 2705581